23 दिसंबर 2005

सत्र 9

अध्यक्षः रवि सिन्हा

अमिताभ मुखर्जी

विज्ञान में जांच-पड़ताल की विधियां

मैं आयोजकों को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने मुझे एक ऐसे विषय पर बोलने का मौका दिया जो मेरी विशेषज्ञता के दायरे में नहीं आता, हालांकि इस विषय पर मैंने कुछ दिनों पहले एक व्याख्यान दिया था। शीर्षक लगभग वैसा ही दिखता है जिस पर मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में बोला था। पिछले दो दिनों की बातें सुनकर मुझे लग रहा है कि जो मैं कहना जा रहा हूं वह पूरी तरह फालतू होगा क्योंकि इतनी पेचीदगियों से जूझने के बाद मेरी बात निहायत सरल चीज़ों पर लौटने जैसी होंगी।

मैं इतना ज़रूर कह दूं कि यह विज्ञान में जांच-पड़ताल की विधियों को लेकर एक प्राकृतिक वैज्ञानिक का नज़रिया है और मैं विज्ञान का अर्थ कमोबेश प्राकृतिक विज्ञान के रूप में लूंगा। अलबत्ता, चलते-चलते मैं थोड़ी इधर-उधर की बात भी करूंगा। मैं जांच-पड़ताल के उद्देश्य, दार्शनिक धरातल और विधियों को परिभाषित करूंगा और फिर इन्हें सुलझाने की कोशिश करूंगा। मुझे लगता है कि कुछ सवाल तो सदन से आए हैं, जैसे कमल के चौदह बिंदु। एक टिप्पणी यह की गई थी कि उन चौदह बिंदुओं में लक्ष्य व विधियां दोनों शामिल हो गए हैं। तो शायद उन्हें विस्तार देना मुनासिब होगा।

शुरुआत के लिए प्राकृतिक विज्ञान की एक कामकाजी परिभाषा दे देता हूं। प्राकृतिक विज्ञान का सरोकार प्रकृति में घटने वाली परिघटनाओं से होता है। अब इसे भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान के मामले में समझना तो आसान होता है मगर कई सीमांत विषयों के संदर्भ में यह उतना सष्ट नहीं है - कंप्यूटर विज्ञान, मानव विज्ञान और मनोविज्ञान इसके प्रमुख उदाहरण हैं। एक बहुत अहम सवाल यह है कि क्या गणित एक प्राकृतिक विज्ञान है, इस सवाल का महत्व कक्षा शिक्षण के लिए है। दार्शनिकों ने इसे बारे में लिखा है और इस पर काफी बहस हुई है। मैं इसका जवाब एक सतर्क 'ना' में देकर आगे बढ़ूंगा।

तो मैं जांच-पड़ताल के लक्ष्य को दो अलग-अलग ढंग से व्यक्त करने की कोशिश करता हूं। पहला, आम तौर पर पूछे जाने वालों सवालों के रूप में: क्या, कहां, कब, कैसे, कितना जैसे सवाल, और मैं गुणात्मक व मात्रात्मक सवालों के उदाहरण भी दूंगा। गुणात्मक सवाल इस तरह के होते हैं: "दिन में तारे कहां चले जाते हैं?" या "पेड़ों में पानी ऊपर कैसे चढ़ता है?" मुझे लगता है कि यहां हमें शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य से बात करनी चाहिए। मैं यह दावा करूंगा कि जांच-पड़ताल के इन लक्ष्यों के आधार पर विज्ञान शिक्षण का पूरा तरीका विकसित किया जा सकता है। हम सदा ऐसे ही सवालों के जवाब की खोज करते रहते हैं। प्रायः ऐसी स्थितियों में लोग मुझे ऐसे प्रश्नों की चुनौती पेश करते हैं: "आपको इस बारे में क्या कहना है कि विज्ञान 'क्यों' सवाल का जवाब नहीं देता?" और मेरे ख्याल में यह एक भ्रम का परिणाम है, 'क्यों' शब्द के दो अर्थों में उपयोग का भ्रम। ज़ाहिर है कि सब लोग सहमत होंगे कि "आकाश नीला क्यों है?" विज्ञान द्वारा पूछा जा सकता है। मगर हम यह सवाल नहीं पूछते कि "किसके लांभ के लिए या किस गुप्त उद्देश्य से आकाश नीला है?"

या यह कि "हमारा अस्तित्व क्यों है?" ये मकसद से सम्बंधित या अंतिम उद्देश्य (प्रयोजन) के सवाल हैं और जब लोग कहते हैं कि हम 'क्यों' नहीं पूछते तो उनके दिमाग में ऐसे सवाल होते हैं। मैं यहां एक चेतावनी जोड़ूंगा। यदि आप किसी भौतिक शास्त्री या रसायन शास्त्री से बात करेंगे तो आपको सामान्य वैज्ञानिक विमर्श के दौरान प्रयोजन सम्बंधी सवाल सुनने को नहीं मिलेगा। लगता है, जीव विज्ञान में ऐसा नहीं है, खास तौर से जैव विकास के संदर्भ में 'जिराफ की गर्दन लंबी क्यों होती है?' जैसे प्रश्न पूरी तरह वैध माने जाते हैं। कहने का मतलब यह नहीं है कि इनका जवाब भी किसी प्रयोजन में स्थित होगा मगर मूलतः यह एक ऐसा प्रयोजन सम्बंधी 'क्यों' है जिसका जवाब शायद प्रक्रियात्मक ही दिया जाएगा।

मुझे जांच-पड़ताल के लक्ष्यों को थोड़ा अलग ढंग से समूहीकृत करना बेहतर लगता है, जिसे आम तौर पर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। इसलिए मुझे लगा कि ऐसे कुछ लक्ष्यों की सूची बना दी जाए। इनमें से कुछ तो वही हैं जो कमल की सूची में थे। तो मैं यह समूहीकरण कुछ क्रियाओं के रूप में करूंगा। उदाहरण के लिए कुछ क्रियाएं हैं : विवरण देना, गिनती करना, वर्गीकरण करना, और कई बार तो ऐसा भी हो सकता है कि लक्ष्य केवल यही हों। मेरे ख्याल में आप इस बात से सहमत होंगे कि वैज्ञानिक इनके साथ दो अन्य लक्ष्य भी रखते हैं : व्याख्या करना कि आकाश नीला होता है क्योंकि हवा के अणु प्रकाश का विवर्तन करते हैं, और भविष्यवाणी करना - अंततः यह बता पाना कि कल सूरज उगेगा या नहीं। और जब कोई इस तरह का कथन दे सके कि "यह धूमकेतु 1758 में लौटेगा", तो इस तरह की भविष्यवाणी को हम मानते हैं कि यह सफल वैज्ञानिक जांच-पड़ताल का लक्षण है। नीडहैम व अन्य लोगों से प्रेरणा लेकर इनमें हम एक क्रिया और जोड़ सकते हैं - नियंत्रण (कंट्रोल)। इसका सम्बंध टेक्नॉलॉजी और प्रकृति पर नियंत्रण से है। कई लोग दलील देंगे कि हाल के समय में यही लक्ष्य सर्वोपरि रहा है। बहरहाल, मैंने इसे छोड़ दिया है क्योंकि यह हम जैसे लोगों के सरोकारों में कोई खास भूमिका नहीं निभाता।

अब मैं थोड़े ज़्यादा ज़ोखिम वाले धरातल पर कदम रख रहा हूं और वैज्ञानिक जांच-पड़ताल के दार्शनिक स्तंभों की बात कर रहा हूं। सवाल यह है कि वैज्ञानिक जांच-पड़ताल में ज्ञान और दुनिया से उसके सम्बंध के बारे में क्या रुख अपनाया जाता है - ये सवाल ज्ञान की प्रकृति और स्वयं वस्तुओं की प्रकृति के बारे में हैं; दूसरे शब्दों में ज्ञानशास्त्रीय व तत्व मीमांसा दोनों से सम्बंधित मान्यताओं की बात है। अब यदि आप किसी कामकाजी वैज्ञानिक (हालांकि भौंडा शब्द है मगर उपयोगी है क्योंकि कामकाजी वैज्ञानिक स्वयं को और एक-दूसरे को आसानी से पहचान लेते हैं, इसलिए वे एक समुदाय में शामिल होते हैं, इसलिए आपको किसी परिभाषा की ज़रूरत नहीं होती) से पूछें, तो वे इन्कार करेंगे कि उन्हें किसी दर्शन की जानकारी है या वे किसी दार्शनिक मत के अनुसार काम करते हैं। वे कहेंगे, "हम कोई पूर्व मान्यता लेकर नहीं चलते।" अलबत्ता, यदि आप थोड़ी चीरफाड़ करें, तो मुझे यकीन है कि आप़को पता चलेगा कि वे तीन आधारभूत मान्यताओं के आधार पर आगे बढ़ते हैं। बेहतर शब्दों के अभाव में इन तीन मान्यताओं को यथार्थवाद, वस्तुनिष्ठता और पदार्थवाद कह सकते हैं। बेहतर शब्दों के अभाव की बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि ये तीन शब्द, खास तौर से अंतिम दो शब्द अन्य अर्थों का बोझ ढोते हैं और इन्हें दर्शन व राजनैतिक विचार के एक समूचे घराने पर प्रयुक्त किया जाता है। यहां इनका उपयोग बहुत सरल अर्थों में किया जा रहा है। मैं थोड़ा समय इस बात पर लगाऊंगा कि इन शब्दों से मेरा अर्थ क्या है।

पहली मान्यता यह है कि विश्व यथार्थ है। कल भोजन के समय किसी ने पूछा था : "यह तो एक मामूली बात है, नहीं?" यह मामूली बात नहीं है क्योंकि ऐसे वैचारिक घराने मौजूद हैं जो मानते हैं कि विश्व माया

या छलावा है या दुनिया और कुछ नहीं, हमारी संवेदनाओं के विवरण का दूसरा नाम है। दूसरी मान्यता यह है कि प्रेक्षक से स्वतंत्र एक वस्तुगत यथार्थ है। किसी ने कल हाथी और अंधों वाली कहानी में बताया था कि अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग भागों की खोजबीन की थी, मगर हम यह कहेंगे कि वैज्ञानिक का मत यह होगा कि हाथी की एक पूंछ और एक सूंड होती है, चाहे एक व्यक्ति पूंछ का विवरण न दे सके और दूसरा व्यक्ति सूंड की बात न कर पाए। यानी वस्तुगत यथार्थ प्रेक्षक से स्वतंत्र है। और अंतिम मान्यता है कि यह यथार्थ भौतिक साधनों की पहुंच में है। इस बात को याद रखना बहुत आवश्यक है क्योंकि कई लोग कहते हैं कि हम ध्यान के ज़रिए इस यथार्थ तक पहुंच सकते हैं। लिहाज़ा इस मान्यता को स्वीकार करके ज्ञान अर्जित करने की एक विधि के रूप में ध्यान को खारिज किया जा सकता है। ध्यान को एक वैध गतिविधि के रूप में खारिज नहीं किया जा रहा है मगर कामकाजी वैज्ञानिकों की मान्यता यह है कि वे जिस यथार्थ की बात कर रहे हैं और जिसका विवरण प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे हैं, उस तक भौतिक साधनों से पहुंचा जा सकता है।

शायद पचास वर्ष पहले इनमें एक मान्यता और जोड़ी जा सकती थी कि यदि किसी वस्तु के घटकों को समझ लिया जाए तो उस पूरी वस्तु को समझा जा सकता है। इस मत को 'घटकवाद' कहते हैं। यह दलील दी जा सकती है कि शुरुआती बीसवीं सदी का विज्ञान जटिल चीज़ों को सरल करने की अनिवार्यता से संचालित होता था। संभवतः कोशिश यह थी कि रसायन शास्त्र को भौतिक शास्त्र में और जीव विज्ञान को रसायन शास्त्र और समाज विज्ञान को जीव विज्ञान में तबदील कर दिया जाए। यदि मैं ज़्यादा सरलीकरण कर रहा हूं, तो मुझे खेद है। अलबत्ता, अब यह मत नहीं माना जाता। मुझे नहीं लगता कि आधुनिक प्रकृति वैज्ञानिक इस बात को मानते हैं। इसकी बजाय दरअसल यह कहा जाने लगा है कि सजीवों और सामाजिक तंत्रों जैसे जटिल तंत्र उनके घटकों के योग से कुछ अधिक होते हैं। वे कुछ अतिरिक्त लक्षण (emergent behaviour) दर्शाते हैं जिन्हें मात्र उनके घटकों के योग के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

मुझे लगता है कि ये काफी गंभीर और भारी-भरकम मसले हैं और मैं देख रहा हूं कि लोग मुंह बनाने लगे हैं। तो मैं एक स्लाइड दिखाता हूं जिस पर एक क्षणिका लिखी है। इस क्षणिका का शीर्षक है 'वस्तुनिष्ठता', हालांकि इसे 'यथार्थवाद और वस्तुनिष्ठता' कहना बेहतर होगा।

There was a young man who said God
must find it exceedingly odd
when he sees that this tree
continues to be
when there is no one around in the quad.
(एक युवा था जिसने कहा कि ईश्वर
यह देखकर बहुत परेशान होता होगा
कि यह पेड़ तब भी होता है उधर
जब बगीचे में कोई नहीं होता)

ऐसे वैचारिक घराने हैं जो मानते हैं कि चीज़ों का अस्तित्व इसलिए होता है, क्योंकि हम उनका अवलोकन करते हैं। तो यह अचरज की बात है कि जब कोई आसपास नहीं होता, तब भी पेड़ होता है। एक हाज़िर जवाब व्यक्ति ने इसका जवाब यों दिया:

Dear Sir your astonishment is odd
I am always around in the quad.
That is why this tree
will continue to be
since observed by yours faithfully God.

जनाब आपकी हैरत अजीब है
मैं हमेशा होता हूं बगीचे में
इसलिए पेड़ बना ही रहेगा क्योंकि
देखता रहूंगा उसे मैं, तुम्हारा ईश्वर

मैं मानता हूं कि विज्ञान की कक्षा में हास्य और कविता का स्थान होना चाहिए। मैं इसको ज़्यादा विस्तार न देकर आगे बढ़ता हूं।

थोड़ी बातचीत विधि के बारे में हो जाए - यहां भी कई चीज़ें हैं जो कमल की सूची में हैं। हज़ारों वर्षों तक इनमें से प्रथम तीन - अवलोकन, मापन और पैटर्न खोजना - ही उन गतिविधियों का लक्षण रहीं जिन्हें वैध रूप में विज्ञान कहा जा सकता है। कई सभ्यताओं में प्राचीन ज्यामिति और खगोल शास्त्र के ये लाक्षणिक गुण रहे हैं। वास्तव में आखरी लक्षण यानी प्रयोग डिज़ाइन करने, विशेष रूप से डिज़ाइन किए हुए प्रयोग करने को किसी ने 'विज्ञान की पहचान' बताया है। और यह गैलीलियो-न्यूटन की क्रांति के साथ ही शुरू हुआ था। अलबत्ता दिल्ली में माइकल मैथ्यूज़ का व्याख्यान सुनने के बाद मुझे शंका होने लगी है कि क्या गैलीलियो को इस सूची में शामिल करें या न करें। हम सबको स्कूल में सिखाया गया था कि वैज्ञानिक पद्धति नाम की कोई चीज़ होती है - आप अवलोकन करते हैं, एक परिकल्पना बनाते हैं और फिर इस परिकल्पना की जांच के लिए प्रयोग डिज़ाइन करते हैं, और परिकल्पना सत्यापित होती है या नहीं होती है। ऐसे कई उदाहरण हैं जो इसमें बढ़िया ढंग से फिट हो जाते हैं। जैसे पीसा की मीनार पर गैलीलियो का मशहूर प्रयोग, जिसमें उन्होंने एक तोप का गोला और एक गोली गिराई थी, हालांकि मुझे इस प्रयोग की सत्यता पर शंका है, मगर यदि उन्होंने यह प्रयोग नहीं किया था, तो करना चाहिए था। यह बढ़िया खबर बनती और पाठ्य पुस्तकों के लिए बढ़िया सामग्री है। पाश्चर के प्रयोगों का ज़्यादा बेहतर रिकॉर्ड उपलब्ध है और उन्होंने यकीनन वे प्रयोग किए थे, जिनमें उन्होंने दर्शाया था कि मक्खियां बंद डिब्बे में नहीं पैदा हुईं और प्रयोग में तुलना के प्रावधान का महत्व प्रतिपादित किया था।

यहां कुछ चेतावनियां हैं। अधिकांश क्लासिकल जीव विज्ञान इस पैटर्न में फिट नहीं होता। डार्विन ने परिकल्पनाओं के बारे में ज़रूर कहा था कि बगैर परिकल्पना के कोई महत्वपूर्ण अवलोकन नहीं हो सकता, मगर इसके बावजूद, अधिकांश जीव विज्ञान बगैर किसी परिकल्पना के ही आगे बढ़ता है। मैं सोचता हूं कि अधिकांश लोग कहेंगे कि जीव विज्ञान प्रकृति विज्ञान के दायरे में ही है। और इस क्षेत्र में एक नया आगंतुक ब्रह्मांड विज्ञान है, इसे बरसों तक यह दर्ज़ा नहीं मिल पाया था क्योंकि इसमें प्रयोग नहीं किए जा सकते।

अलबत्ता अब इसे सम्मानजनक स्थान मिल गया है। इस वैज्ञानिक विधि पर अक्सर सवाल उठाए जाते हैं और हाल के वर्षों में काफी गहरे सवाल उठाए गए हैं।

थोड़ी बात वैज्ञानिक सिद्धांतों की करने की इज़ाजत चाहूंगा। मेरा कहना है कि 'नियम' शब्द का उपयोग दो अलग-अलग चीज़ों के लिए होता है - प्रायोगिक नियम और मूलभूत नियम। हो सकता है कि आप कहेंगे कि मैं थोड़ी अतिशयोक्ति कर रहा हूं और वास्तव में कोई अंतर नहीं है, या सिर्फ कम-ज़्यादा का अंतर है। मगर मुझे लगता है कि यह अंतर करना उपयोगी है। प्रायोगिक नियमों के उदाहरण हैं ओह्म का नियम और बॉयल का नियम। इस तरह के उदाहरण सामाजिक विज्ञान में भी मिल जाएंगे, जैसे मांग-आपूर्ति का नियम अथवा भाषा विज्ञान में ग्रिम और वर्नर के नियम प्रायोगिक नियमों की श्रेणी में आते हैं। ये प्रायः दो या दो से अधिक राशियों के परस्पर सम्बंध को मात्रात्मक रूप में प्रकट करते हैं। मैं इन्हें मूलभूत नियमों से अलग करके देखता हूं। मूलभूत नियमों के उदाहरण हैं न्यूटन के गति व गुरुत्वाकर्षण के नियम।

प्रायोगिक नियमों के विपरीत मूलभूत नियमों के कई गुण होते हैं। पहला प्रत्यक्ष अंतर है कि इनमें आंकड़ों के आधार पर ज़बर्दस्त एक्स्ट्रापोलेशन (बहिर्वेशन) किया जाता है अर्थात इनकी प्रायोगिक बुनियाद अक्सर काफी कमज़ोर हो सकती है। कई बार तो यह भी कह सकते हैं कि उन आंकड़ों से ऐसा नियम निकालना पूरी तरह बेवजह था; यदि न्यूटन के अलावा कोई और होता, तो वह शायद बलों के व्युत्क्रम वर्ग के नियम तक न पहुंचता क्योंकि आंकड़ों से यह नहीं निकलता था। वास्तव में न्यूटन के बारे में यह कहना उतना ठीक नहीं है, मगर कई और उदाहरण हैं, जैसे बीसवीं सदी में ब्रह्मांड विज्ञान के अवलोकन। मुझे संदेह है कि ये पर्याप्त प्रायोगिक आंकड़ों की कसौटी पर खरे उतरेंगे, मगर फिर भी ये बुनियादी सिद्धांतों की दुनिया में हैं। आंकड़ों से एक्स्ट्रापोलेशन के अलावा एक गुंजाइश भविष्यकथन की क्षमता भी है। ओह्म के नियम की भविष्यवाणी की ताकत बहुत सीमित है, जबकि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम में ज़बर्दस्त ताकत है। और एक तीसरा गुण है कि यदि ओह्म का नियम नाकाम हो जाए, तो हमें उतनी चिंता नहीं होगी मगर न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम नाकाम हो जाए, तो हम चिंचित होंगे।

इसके साथ हम सिद्धांतों पर आ जाते हैं। मैं यहां कार्ल पॉपर के काम को रेखांकित करना चाहूंगा। पॉपर ने ज़ोर देकर कहा था कि सारे सिद्धांत मानव निर्मितियां हैं। और उन्होंने यह क्लासिक कसौटी दी जो किसी सिद्धांत को वैज्ञानिक सिद्धांत बनाती है - वह सिद्धांत खंडन-योग्य होना चाहिए। उन्होंने सत्यापन और खंडन के बीच एक असंगति देखी। वैज्ञानिक पद्धति की बात करते समय मैंने कहा था कि आप परिकल्पना का सत्यापन करते हैं या नहीं कर पाते हैं। पॉपर ने स्पष्ट किया कि कितने भी अवलोकन, कितने भी प्रायोगिक प्रमाण वास्तव में किसी चीज़ का सत्यापन नहीं करते; बहुत हुआ तो वह गलत साबित हो सकती है। और यदि कोई सिद्धांत खंडन के योग्य है, तो वह वैज्ञानिक सिद्धांत है, अन्यथा नहीं। लगेगा कि यह विज्ञान-गैर-विज्ञान के बीच बहुत सरलीकृत भेद है मगर यह बहुत उपयोगी है, खास तौर से वर्तमान दौर में जहां कई वक्ताओं ने वैज्ञानिक मिज़ाज व विचारधारा की चर्चा की है। इक्कीसवीं सदी की शुरुआत में, खासकर भारत में, जिस ज़माने में हम जी रहे हैं, वहां यह ज़ोर देना बहुत आवश्यक है कि शायद पॉपर की कसौटी सबसे उपयोगी, सरल व 'हां-नहीं नुमा' कसौटी है और मुझे लगता है कि यह फैसला करने के लिए इसकी उपयोगिता आज भी है कि कौन-सा सिद्धांत वैज्ञानिक है, कौन-सा नहीं।

अब मैं वैज्ञानिक जांच पड़ताल की सीमाओं पर आता हूं। वैज्ञानिक पद्धति कई मुद्दों को छोड़कर स्वयं को सीमित कर लेती है। मैं इन मुद्दों को चार श्रेणियों में रखूंगा। एक तो है प्रयोजन सम्बंधी सवाल, अंतिम मकसद

से जुड़े सवाल। दूसरी तरह के मुद्दों का सम्बंध ऐसी बातों से है कि मुझे चाय पसंद है तो उसे कॉफी। वैज्ञानिक जांच-पड़ताल ऐसे मुद्दों के चक्कर में नहीं पड़ती। और तीसरी व चौथी श्रेणी का सम्बंध नैतिक/आचरण सम्बंधी मुद्दों और आध्यात्मिक मुद्दों से है। मैं बताना चाहूंगा कि इसमें तंत्रिका विज्ञान और भेजा (ब्रेन) अध्ययन कहां आते हैं। भेजा विज्ञान इन सीमाओं को पार करने का प्रयास नहीं करता। वह सिर्फ उन चीज़ों की तलाश करना चाहता है जिनके आधार पर इन्सान चयन करते हैं। और भेजा विज्ञान को बखूबी जीव विज्ञान की एक शाखा, एक मायने में जीव विज्ञान का विस्तार कहा जा सकता है; यह वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की सीमाओं को नहीं लांघता।

जैसा कि मैंने अपने सारांश में लिखा है, काफी समय से वैज्ञानिक पद्धति पर दो अन्य दिशाओं से आक्रमण होता रहा है। इनमें से एक का सम्बंध कुन के काम से है; कुन ने यह तर्क दिया था कि विज्ञान की प्रगति वैज्ञानिक पद्धति के बारंबार क्रमिक इस्तेमाल से नहीं होती अपितु बीच-बीच में होने वाली छलांगों या पैराडाइम शिफ्ट से होती है। मुझे वाकई अचरज है कि यह सम्मेलन कुन बनाम पॉपर बहस में तबदील नहीं हुआ और थोड़ी खुशी भी है कि ऐसा नहीं हुआ, कि विमर्श का स्तर उससे कहीं आगे है। अक्सर वैज्ञानिक बहसें, एक मायने में, प्रायः अवैज्ञानिक ढंग से बंद होती हैं। दूसरे शब्दों में, कामकाजी वैज्ञानिक फैसला करते हैं कि विज्ञान क्या है और क्या नहीं है, और लगता नहीं कि वे इस मामले में खंडन-योग्य होने की इस कसौटी का पालन करते हैं। दरअसल, एक बड़ा पैराडाइम शिफ्ट, जो हम सबको वांछनीय और आवश्यक लगेगा, वह शायद सृष्टिवाद से विकासवाद की ओर परिवर्तन है, मगर यह कहना थोड़ा मुश्किल है कि क्या विकासवाद कोई ऐसा सिद्धांत है जिसे किसी एक प्रायोगिक प्रमाण से गलत साबित किया जा सकता है।

अंततः, चूंकि प्रेक्षक प्रेक्षित तंत्र का हिस्सा है, तो क्या यथार्थ का कोई वस्तुनिष्ठ निर्धारण हो सकता है? यह बात खास तौर से यथार्थवाद के एक विशिष्ट संस्करण - स्थानीय यथार्थवाद - पर लागू क्वांटम सीमा की वजह से फोकस में आती है। और आइंस्टाइन, पोडोस्की और रोसेन के काम के बाद इसे क्वांटम यांत्रिकी की एक निहित समस्या माना जाता है। अलबत्ता, कुछ समाज वैज्ञानिक इसकी व्याख्या यह कहकर करते हैं कि इसके आधार पर तो भौतिक शास्त्र स्वयं ही वस्तुनिष्ठता की वैधता को समाप्त कर देता है और इसलिए विज्ञान की पूरी दार्शनिक बुनियाद पर ही यह सवाल उठ जाता है कि हर चीज़ सापेक्ष है। मेरे ख्याल में यह थोड़ी अतिशयोक्ति है और निष्कर्ष के रूप में मैं यह कहूंगाः ज़्यादातर कामकाजी वैज्ञानिक मानेंगे कि इस मेज़ की एक वस्तुनिष्ठ लंबाई है, और समक्षणिक मापन को लेकर या स्थानीय परिमेयता को लेकर क्वांटम सीमाएं कुछ भी हों, यह लंबाई मापन के विभिन्न साधनों से हमारी पहुंच में है। उनका इस पर कोई असर नहीं पड़ता। लिहाज़ा, विज्ञान की स्थिति थोड़ी डगमगाई है, मगर चरमराई नहीं है। शुक्रिया।

चर्चा

डी. बालसुब्रमण्यन : आपने एक थोड़े असहज शब्द 'विकासवाद' का ज़िक्र किया था। कभी सुना नहीं था। जैव विकास बनाम सृष्टिवाद या सोची-समझी डिज़ाइन की बहस में एक दिक्कत है। मेरे ख्याल में जो एक मुद्दा उठाया गया था, आपने उसको छुआ भर था, कि क्या जैव विकास एक परीक्षण-योग्य सिद्धांत है, क्या यह सचमुच खंडन-योग्य या सत्यापन-योग्य है। अब ऐसा लगता है कि हम वाकई इसे प्रयोगशाला में आज़मा सकते हैं, पहले यह संभव नहीं था। आजकल कुछ नए प्रयोग आए हैं जिन्हें 'प्रयोगशाला विकास' या निर्देशित

विकास कहते हैं। इनमें हूबहू डारविन नुमा विचारों का उपयोग किया जाता है। बार-बार इसकी सत्यापन-योग्यता सामने आ रही है।

दूसरी बात आपने घटकवाद बनाम अतिरिक्त गुणों (emergent properties) की कही। सही है, घटकवाद अपने मूल अर्थ में पर्याप्त नहीं है। दूसरी ओर, मुझे लगता है कि हमारे पास इसके सिवाय कोई दूसरा तरीका भी नहीं है कि इन अतिरिक्त गुणों के बारे में जानने के लिए किसी चीज़ के घटकों के गुण देखने से शुरू करें। और क्या कर सकते हैं?

एन. पंचापकेसन : रविंद्रनाथ टैगोर और अल्बर्ट आइंस्टाइन के बीच एक चर्चा हुई थी। दोनों की मुलाकात यू.एस.ए. में हुई थी और सभी जानते हैं कि आइंस्टाइन मानते थे कि मनुष्यों से बाहर एक यथार्थ है, कि एक स्थायी, प्रदत्त यथार्थ है। चर्चा के दौरान रविंद्रनाथ टैगोर ने आइंस्टाइन से पूछा, "आप एक विश्व की बात कर रहे थे, मगर यदि इन्सान न हों, तब इस विश्व को कौन देखेगा। तब क्या यथार्थ का कोई अर्थ होगा?" आपका इस बारे में कोई विचार है क्या?

राजेंद्र सिंह : प्रोफेसर बालसुब्रमण्यन की बात पर एक छोटी-सी टिप्पणी। मेरा विचार है कि विज्ञान के इतिहास में ऐसे उदाहरण रहे हैं जब घटकवाद के अलावा किसी अन्य रास्ते को अपनाया गया। मेरे ख्याल में भौतिकी और रसायन शास्त्र के उदाहरण गौरतलब हैं, जहां 'घटकवाद' का नहीं बल्कि 'विस्तारवाद' का इस्तेमाल किया गया था। इसलिए मुझे लगता है कि इस विचार की काफी सख्त आलोचना की जा सकती है कि विज्ञान को अनिवार्य रूप से घटकवादी रास्ते पर ही चलना पड़ेगा। ऐसे मामलों की संख्या उल्लेखनीय है जहां अन्य रास्ते अपनाए गए हैं।

स्वाति : इस सवाल को बहुत गंभीरता से न लें मगर मैंने देखा कि आपने यथार्थवाद और वस्तुनिष्ठता की चर्चा की मगर भौतिकवाद को छोड़ दिया। क्यों?

माइकल मैथ्यूज़ : वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की सीमाओं की आपकी सूची पर एक सवाल। आपने नैतिक व आध्यात्मिक सवालों को बाहर रखा है। मुझे यकीन है कि इन दोनों के संदर्भ में एक हद तक तो वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की जा सकती है और मुझे लगता है कि इस मामले में आपने विज्ञान को थोड़ा जल्दी बरतरफ कर दिया। जैसे प्रार्थना का असर जैसे मुद्दों पर यकीनन वैज्ञानिक जांच-पड़ताल की जा सकती है। और नैतिक सवालों के मामले में भी स्पष्ट रूप से कुछ दूरी तक तो जांच-पड़ताल की जा सकती है। जैसे वैज्ञानिक जांच-पड़ताल इस बात की हो सकती है कि जीवन के लिए एक अच्छी नैतिक व्यवस्था या नैतिक आचार संहिता क्या हो।

रमा कांत अग्निहोत्री : यह सवाल मेरे दिमाग में तब आया था जब आप जांच-पड़ताल के विभिन्न क्षेत्रों को ज्ञान की विभिन्न प्रणालियों के आधार पर वर्गीकृत कर रहे थे। मैं उसी समय आपसे पूछना चाहता था - आप भाषा के अध्ययन को कहां रखेंगे, गंभीरतापूर्वक? आपने ग्रिम्स नियम का ज़िक्र किया मगर मुद्दा वह नहीं है।

अमिताभ मुखर्जी : सवालों को सिलसिलेवार लेता हूं। पहला सवाल सृष्टिवाद बनाम जैव विकास का था, मैंने विकासवाद शब्द का उपयोग क्यों किया? मैं यह बात वैज्ञानिक बहसों के समापन के संदर्भ में कह रहा था। और मेरा निजी मत यही है कि हमारे लिए सृष्टिवाद की बजाय जैव विकास पर विश्वास करने के लिए पर्याप्त आधार है, मगर यह मेरा निजी मत है। मगर बहस किसी एक अकेले प्रमाण के आधार पर या किसी ऐसी चीज़ के आधार पर बंद नहीं हुई थी जो निर्णायक रूप से जैव विकास को प्रमाणित कर सके। जिन प्रयोगशाला प्रयोगों की आप बात कर रहे हैं और जो आज चल रहे हैं, वे तो हाल की बात हैं, मगर वैज्ञानिक जगत में

तो बहस काफी पहले अंजाम तक पहुंच चुकी थी। यदि आप कामकाजी वैज्ञानिक समुदाय से पूछें तो वे बताएंगे कि यह मुद्दा बंद हो चुका है, यकीनन जैव विकास के हक में। तो चूंकि यह मत *ए प्रायोरी* (पूर्व निर्धारित) मत है इसलिए इसे 'वाद' कहने में कोई बुराई नहीं है।

घटकवाद बनाम अतिरिक्त गुणों (emergent properties) की बहस - मैं यह नहीं कह रहा हूं कि घटकवाद विज्ञान में तरक्की का प्रमुख चालक रहा है। भौतिकी की विधियों को रसायन शास्त्र में और रसायन शास्त्र की विधियों को जीव विज्ञान में लागू करने से अंततः वैज्ञानिक ज्ञान के भंडार में बहुत इज़ाफा हुआ है और यह माना जा सकता है कि अन्यथा यह संभव न होता। अलबत्ता, यह निहित रूप से सीमित है और पूरे इतिहास में ऐसा नहीं हुआ है। घटकवाद की मदद से काफी तथाकथित तरक्की हुई थी और अब लगता है कि हम एक ऐसे दौर में पहुंच गए हैं जहां हम एकदम विपरीत दिशा में पलट रहे हैं और अतिरिक्त गुणों की ओर देख रहे हैं। मेरे ख्याल में बात कुछ ऐसी है। मगर इस पर बहस हो सकती है; मैं इस बिंदु पर ज़्यादा हठ नहीं करूंगा।

टैगोर और आइंस्टाइन के सवाल पर - यदि कोई इन्सान न हो, तो क्या दुनिया का वजूद रहेगा? मैंने अपना मत पहले ही बता दिया है, जो मेरे ख्याल से सारे कामकाजी वैज्ञानिक मानते हैं, कि प्राकृतिक विज्ञान में जिस विश्व और जिन परिघटनाओं का हम वर्णन करना चाहते हैं, वे तब भी रहेंगी जब कोई इन्सान न होंगे। मुझे लगता है कि उन क्षणिकाओं से बेहतर मैं कुछ नहीं कह सकता।

एक टिप्पणी थी कि मैंने भौतिकवाद को छोड़ दिया, क्यों? मेरे ख्याल में मैंने इसे छोड़ा नहीं, कुछ तो मैंने कहा था।

नैतिक व आध्यात्मिक सवाल, मुझे लगता है कि इस मामले में कुछ कहना चाहिए। क्या प्रार्थना असरदार होती है? लगता है कि वैज्ञानिक प्रयोग इसकी जांच कर सकते हैं। हम एक कंट्रोल (तुलना) समूह बनाएंगे, हम कुछ लोगों से कहेंगे कि वे किसी लक्ष्य के लिए प्रार्थना करें, फिर देखेंगे कि उस लक्ष्य की प्राप्ति होती है या नहीं। यदि वह लक्ष्य प्राप्त नहीं होता तो हम कहेंगे कि यह परिकल्पना गलत है कि प्रार्थना असरदार होती है। यानी हम कह सकते हैं कि यह विषय वैज्ञानिक ज़ांच का विषय है। मगर यह सवाल वैज्ञानिक जांच का विषय नहीं है कि हम प्रार्थना करें या नहीं। अब नैतिक व आध्यात्मिक सवालों का ज़्यादा सम्बंध इस बात से होता है कि "क्या हम प्रार्थना करें?", न कि इस बात से कि "क्या प्रार्थना का असर होता है?" तो प्रार्थना के असर का मामला शायद वैज्ञानिक जांच का विषय हो सकता है। मगर यदि आप यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रार्थना का असर नहीं होता, फिर भी कोई कह सकता है कि मैं उस तरह की प्रार्थना नहीं करने वाला हूं। इसलिए मैं कहूंगा कि वैज्ञानिक जांच की एक स्व-आरोपित सीमा है, मगर यह कहना बिलकुल अलग बात होगी कि हम इन विधियों को लेंगे और ऐसे तंत्रों पर लागू करेंगे जिन्हें पहले छोड़ दिया गया था। यदि आप ऐसा करेंगे तो आप उससे आगे जाएंगे जिसे कामकाजी वैज्ञानिक वैध विज्ञान मानते हैं। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि आप वैध विज्ञान से आगे जा रहे हैं, मैं यह नहीं कर रहा हूं कि वह काम उपयोगी व ज्ञानवर्धक नहीं होगा।

अब अंतिम सवाल थाः "आप भाषा के अध्ययन को कहां रखेंगे?" यकीनन मैं इसे मनोविज्ञान के साथ सीमांत क्षेत्रों की सूची में रखूंगा क्योंकि काफी हद तक यह तर्क दिया जा सकता है कि भाषा प्रकृति विज्ञान का हिस्सा है, यह एक प्राकृतिक परिघटना का अन्वेषण करता है। मगर इसी तरह यह तर्क भी दिया जा सकता है कि यह कंप्यूटर विज्ञान या शायद गणित के समान है, जो कभी-कभी यथार्थ विश्व से पूरी तरह अलग हो जाता

है। मगर मैं एक बात कहूंगा कि माइकल मैथ्यूज़ ने कल अमूर्तीकरण के बारे में जो बात कही थी वह भाषा के क्षेत्र में भी बखूबी झलकती है, जहां यह शायद भाषा के अध्ययन का एक प्रमुख तत्व है। तो यदि इस तरह का अमूर्तीकरण प्राकृतिक विज्ञान का लक्षण है, तो भाषा विज्ञान भी प्रकृति विज्ञान के साथ बैठने का दावा कर सकता है।

के.पी. मोहनन

विज्ञान शिक्षा में निष्कर्ष, प्रमाण और जांच पड़ताल

शुक्रिया। आयोजकों ने मुझे विज्ञान से जुड़े व विज्ञान शिक्षा के पाठ्यक्रम, कक्षा शिक्षण, मूल्यांकन वगैरह से जुड़े दार्शनिक, राजनैतिक और अवधारणात्मक मुद्दों पर विचार करने को कहा है और यह भी कहा है कि मैं इन दोनों (विज्ञान व विज्ञान शिक्षा) को जोड़कर देखूं। मेरी तत्काल प्रतिक्रिया थी कि यह तो बहुत मुश्किल है। खैर, कोशिश करके देखता हूं। यह बता दूं कि एक पर्चा वितरित किया गया है और मैं करीब 25 मिनट बोलूंगा और बीच में कहीं मनमाने ढंग से रुक जाऊंगा। उसके आगे का व्याख्यान तब जारी रहेगा जब आप लौटेंगे और पर्चा पढ़ेंगे।

मैं विज्ञान शिक्षा को आज जिस ढंग से देखता हूं उसकी नाकामी के बारे में कुछ कहूंगा, और जानने के एक पैराडाइम के रूप में विज्ञान के बारे में कुछ कहूंगा और इसके आधार पर हमारे पाठ्यक्रम में क्या होना चाहिए। इस तरह से मैं इन दोनों को जोड़ने की कोशिश करूंगा। फिर मैं सीखने के कुछ अभ्यास बताऊंगा जो इस पैराडाइम को प्रतिबिंबित करते हैं ताकि छात्र विज्ञान के इस पैराडाइम को, इस ज्ञान शास्त्र को हासिल कर सकें और उसके बाद मैं मूल्यांकन कार्य के कुछ उदाहरण दूंगा। ज़ाहिर है, मैं इन उदाहरणों की बात बहुत विस्तार में नहीं कर पाऊंगा मगर उदाहरणों से कुछ अंदाज़ लगेगा कि हम किस तरह की चीज़ें कर सकते हैं।

तो, शुरुआत यह कहकर करता हूं कि धर्म और अकादमिक जगत के बीच एक बुनियादी अंतर है, जो हम देखेंगे - खैर यह बताने की ज़रूरत नहीं है, हम सब इसे जानते हैं। धर्म में (यदि मैं एक ईसाई हूं, एक मुस्लिम हूं, हिंदू हूं, जो भी मेरा धर्म हो) मैं चाहूंगा कि मेरी बेटी उसी धर्म में शादी करे। धर्म में यह काफी आम बात है। मगर अकादमिक जगत में यदि मैं स्थिर अवस्था सिद्धांत (steady state theory) में यकीन करता हूं, तो मैं यह आग्रह नहीं करता कि मेरा बेटा या बेटी भी स्थिर अवस्था सिद्धांत को स्वीकार करे। मैं उन्हें चुनने की छूट देता हूं। ऐसा धर्म में सामान्य तौर पर नहीं होता। संस्थाबद्ध धर्म में हम चाहेंगे कि हमारे विश्वास, हमारे मूल्य हमारे बच्चों में स्थानांतरित हों, मगर अकादमिक जगत में नहीं। तब हम यह उम्मीद करेंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में धार्मिक की बजाय अकादमिक मानसिकता झलके। बदकिस्मती से, जैसा कि मुझे नज़र आता है, ऐसा होता नहीं है। शिक्षा धर्म की परंपरा का निर्वाह करती आ रही है, मत-शिक्षण (इनडॉक्ट्रिनेशन) की परंपरा का अनुकरण करती आ रही है। यह मुख्य बात मैं कहना चाहता हूं, और यही बात इवान इलिच ने भी कुछ दशकों पहले अपनी पुस्तक 'डीस्कूलिंग सोसायटी' में कही थी कि संस्थाबद्ध शिक्षा एक तरह का इनडॉक्ट्रीनेशन ही है। और उनका समाधान यह था कि स्कूल व कॉलेजों को खत्म कर दिया जाए। हालांकि मैं उनकी आलोचना से सहमत हूं मगर मैं उनके समाधान को स्वीकार नहीं करूंगा। एक वैकल्पिक समाधान